प्राचीन भारत में वर्णव्यवस्था की उत्पति एवं विकास

सन्दीप मलिक
एम.ए. एवं नेट (इतिहास)
म.नं. 193, सैक्टर–2, रोहतक (हरि0)

शोध आलेख सार– चूंकि वर्ण व्यवस्था की उत्पति ऋगवैदिक काल से मानी जाती है और जब आर्य जाति ने अनार्य जाति से युद्ध करने पड़े तो पराजित दस्युओं को आर्य लोगों ने अपने समाज का प्रमुख अंग बना लिया और अंततः समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए आर्य लोगों ने वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस व्यवस्था के तहत चार वर्णों का निर्देश किया गया और समाज को पुरूष का रूपक प्रदान किया गया। वस्तुतः अनार्य लोग वेदों के ज्ञाता नहीं थे, इसलिए कार्यों के आधार पर समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में बांट दिया गया। वैदिक काल में यह चतुर्वर्ण व्यवस्था अधिक कठोर नहीं थी, परन्तु कालान्तर में इसमें काफी परिवर्तन हुए। सूत्रकाल में भी यह व्यवस्था धर्म और तर्क का समर्थन प्राप्त करके काफी कठोर हो गई। इस व्यवस्था का उल्लेख व कठोर रूप महाभारतकाल में भी देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था की उत्पति एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

मूलशब्द– ऋग्वेद, वर्ण व्यवस्था, वैदिककाल, अनार्य, चतुर्वर्ण व्यवस्था, महाभारतकाल।

भूमिका– वस्तुतः ऋग्वैदिक समाज वर्ग भेद रहित था और समाज के सभी लोगों को समानता की दृष्टि से देखा जाता था। ऋग्वेद में वर्ण का अर्थ रंग तथा कहीं–कहीं पर व्यवसाय के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आर्य लोग गौरवर्ण के थे और आरम्भिक समय में वैदिक काल में आर्य समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन वर्णों में विभाजित था। जब आर्यों का अनार्यों के साथ युद्ध हुआ तो पराजित अनार्यों को भी आर्य समाज में जगह दी गई और एक नये वर्ण का उदय हुआ जिसे शूद्र वर्ण कहा जाता है।[1] कालांतर में वर्ण व्यवस्था में काफी बदलाव आया और संकीर्णता का दोष पैदा हो गया।

वर्ण व्यवस्था की उत्पति एवं विकास– वास्तव में वर्ण शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय साहित्य में कई अर्थों में किया गया है, परन्तु वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध वैदिक काल के चार वर्णों– ब्राह्मण, क्षत्रिय,

[1] प्रशान्त गौरव, **प्राचीन भारत – लगभग 600ई0 तक,** पृ0 97.

वैश्य और शूद्र से है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि वर्ण व्यवस्था पूर्व वैदिक काल से भी पहले से ही प्रचलित थी। आर्यों ने इसे केवल विकसित संस्था का रूप दिया। वर्ण उत्पति को लेकर ऋग्वेद के दसवें मण्डल में इस बात का उल्लेख हुआ है कि हजार सिर, हजार आंखों और हजार पैरों वाले एक विराट पुरूष की उत्पति हुई और उसी विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।[2] वैदिक परवर्ती साहित्य में भी ऐसी ही कल्पना मिलती है और महाभारत काल में विराट पुरूष का स्थान ब्रह्मा ने ले लिया। मनुस्मृति में भी इस बात का उल्लेख है कि समस्त सृष्टि की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को उत्पन्न किया।[3]

वस्तुतः कुछ साहित्यकारों का मानना है कि ऋग्वेद में वर्ण–व्यवस्था के बारे में केवल एक बार संकेत हुआ है और पुरूष सूक्त में ही चार वर्णों का उल्लेख है। ऋग्वेद में ब्राह्मण शब्द 'ब्रह्मन' के रूप में कई बार उल्लेखित है। ऋग्वेद में इस बात का भी वर्णन हुआ है कि जो राजा ब्राह्मण को उच्च पद देकर उसका आदर करता है, शान्ति व आन्नद से रहता है, उसे धन–धान्य की कमी नहीं रहती एवं जनता उसको नमन करती हैं। जो राजा ब्राह्मण की मदद करता है, उसकी रक्षा देवता करते हैं।[4] यजुर्वेद में भी एक स्थल पर ही चारों वर्णों का उल्लेख है। इसमें भी ब्राह्मण को 'ब्रह्मन' ही कहा गया है। ऋग्वेद में क्षत्रिय शब्द के लिए 'राजन्य' शब्द का प्रयोग हुआ है तथा वैश्य शब्द के लिए 'विश्' शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि वैदिक काल कि वर्णव्यवस्था कार्य विभाजन सिद्धान्त पर आधारित थी और सारे समाज को एक पुरूष का रूपक माना जाता था। इसका अर्थ यह था कि जिस प्रकार शरीर के सभी अंग एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और यदि किसी अंग में पीड़ा हो जाये तो उसका अनुभव सारे शरीर को करना पड़ता है, यही जीवित समाज का लक्षण है। राजा ही वर्ण व्यवस्था को लागू करता था और सभी वर्णों को अपने–अपने कर्त्तव्य निर्वहन के लिए प्रेरित करता था। यह व्यवस्था वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक बनी रही।

---

[2] **ऋग्वेद,** 10, 90, 1–2, 12.

[3] **मनुस्मृति–** 1, 87.

[4] **ऋग्वेद–**4, 50, 8, 9.

चूंकि ऋग्वेद काल से ही वर्ण व्यवस्था कई विशिष्टताएं समेटे हुई थी और रामायण काल में धीरे–धीरे यह विकसित रूप में उभर गई। इस काल में वर्णों को स्थायीत्व प्राप्त हुआ और ऋग्वेदकालीन गुण व कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था अब जन्म पर आधारित हो गई। इस तरह समाज जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था के रूप में विकसित हुआ। रामायण में तो ब्राह्मणो के भी क्रमानुसार कई वर्ग मिलते हैं। इस समय कुछ प्रवृतिधर्मी ब्राह्मण थे तथा कुछ निवृति ब्राह्मण थे। इस समय भी ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी अपने वर्णानुसार कर्मों का पालन करते थे। कुछ जन्म से ही ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय धर्म का निर्वहन करते थे इन्हें 'क्षत्र ब्राह्मण' कहा जाता था। परशुराम ऐसे ही ब्राह्मण थे।[5] इस समय कुछ ऐसे भी ब्राह्मण थे जो जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी वैश्य वृति अपनाते थे और फिर भी ब्राह्मण कहलाते थे। त्रिजट ब्राह्मण इसका प्रमुख उदाहरण है। वाल्मिकी रामायण में ब्राह्मण धर्म की तरह क्षत्रिय धर्म की मर्यादा का भी दिग्दर्शन कराया गया है। राम इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस समय वैश्यों का भी समाज में विशेष महत्व था तथा शूद्रों के लिए सामाजिक संगठन की रूपरेखा में कुछ प्रतिबंध अवश्य थे। फिर भी रामायण में चातुवर्ण्य की पूर्णांग व्यवस्था का रूप मिलता है जिसमें वर्ण संकरता का कोई दोष नहीं था। इस समय क्षत्रिय समाज के लोगों द्वारा ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा भाव रखा जाात था तथा सभी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्य ब्राह्मण वर्ण द्वारा ही संचालित होते थे। इस तरह महाभारत काल से पहले के साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था की उत्पति ऋग्वेद काल में ही हुई और उसी में उसका विकास भी हुआ।

ब्राह्मण वर्ण– चूंकि वैदिक काल में ही ब्राह्मण वर्ण को विशेष प्रकार के सामाजिक व राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे। समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च पद प्राप्त था और राजाओं के दरबार में ब्राह्मणों का विशेष सम्मान होता था। रामायण काल में भी ब्राह्मण वर्ण की मान्यता उच्चतम शिखर पर थी तथा महाभारत काल में भी यह अधिक विकसित हुई। इस समय ब्राह्मण को समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता था तथा वह अग्नि की तरह दाहक होता था। कुपित किया गया गया ब्राह्मण अग्नि, सूर्य, विष एवं शस्त्र की तरह भयंकर होता था। ब्राह्मण को सभी प्राणियों का गुरू माना जाता था। जब ब्राह्मण को क्रोध आता था तो सभी उससे दूर रहते थे। आदि पर्व में लिखा है कि व्रत का पालन करने वाला

[5] भरतलाल चतुर्वेदी, **महाभारतकालीन समाज व्यवस्था,** पृ0 25.

ब्राह्मण क्रोध में आने पर अपराधी को जिस प्रकार जलाकर भस्म कर देता है, उस प्रकार अग्नि व सूर्य भी नहीं जला सकते।[6] यही कारण था कि समाज में ब्राह्मणें में समाज के आदर का विशेष ध्यान रखा जाता था। क्षत्रिय समाज के लोग भी किसी भी परिस्थिति में ब्राह्मण का वध नहीं करते थे, परन्तु युद्ध में प्रवृत ब्राह्मण का रणभूमि में वध करना शास्त्रानुकूल माना जाता था।

महाभारत में कई स्थानों पर ब्राह्मण के नित्य कर्मों का भी उल्लेख किया गया है। एक स्थान पर लिखा गया है कि ब्राह्मण का कर्म यज्ञ कराना, वेद पढाना तथा विशुद्ध दान ग्रहण करके जीवन निर्वाह करते हुए संसार के लोगों पर अनुग्रह करना हैं। एक जगह पर तो यह भी लिखा गया है कि सदाचरण व संयम से वेदों का अध्ययन करना ही ब्राह्मण का विशेष गुण है। महाभारत काल में ब्राह्मण में तप, यज्ञ, विद्याध्ययन, भिक्षावृति, इन्द्रिय संयम, ध्यान, एकांतवास, संतोष तथा यथाशक्ति ज्ञानोपर्जन जैसी चेष्टाएं होना अनिवार्य माना गया।[7] शान्तिपर्व में ही अन्य स्थान पर लिखा गया है कि यदि ब्राह्मण को स्वधर्म का पालन करते हुए धन की प्राप्ति हो जाये तो वह वैवाहिक जीवन जी सकता है। वह भी अन्य लोगों की तरह दान लेने के साथ–साथ दान देने, यज्ञ करने तथा यज्ञ कराने, अध्ययन करने तथा अध्यापन कार्य भी करता था। इस काल में चारों आश्रम के पालन की व्यवस्था केवल ब्राह्मणों के लिए ही थी।[8] जो ब्राह्मण उत्तम गुणों से युक्त होते थे उन्हें ब्रह्मा के समान समझा जाता था। ब्राह्मण वर्ण में जो ब्राह्मण आजीविका के अभाव में चोरी करता था तो राजा का कर्त्तव्य था कि वह उसका भरण–पोषण करे। ब्राह्मण में सत्य, दान, अद्रोह, अक्रूरता, लज्जा, घृणा व तप इन सात गुणों का होना अनिवार्य था। अंततः ब्राह्मण प्रवृति और निवृति दोनों मार्गों का पालन करते थे।

क्षत्रिय वर्ण– इस वर्ण की उत्पति का उल्लेख 'पुरूष सूक्त' में मिलता है। यह परम्परा महाभारत काल में भी प्रचलित रही। कार्य विभाजन की दृष्टि से ऋग्वेद में क्षत्रिय की उत्पति पुरूष की भुजाओं से मानी गई है। महाभारत काल में भी क्षत्रिय लोगों द्वारा ब्राह्मणों का काफी सम्मान किया जाता थां परन्तु राजा लोग कुलीन क्षत्रिय से ही युद्ध करते थे। समाज की रक्षा करना ही क्षत्रियों का प्रमुख धर्म

---

[6] **आदिपर्व,–** 28, 3–7.

[7] **शान्तिपर्व,–** 13, 8.

[8] भरतलाल चतुर्वेदी, **महाभारतकालीन समाज व्यवस्था,** पृ0 30.

था। जब सूत पुत्र होने के कारण कर्ण को अर्जुन के साथ युद्ध करने से रोक दिया गया तो दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा बनाकर अर्जुन के साथ युद्ध करने का पात्र बना दिया। इससे पता चलता है कि महाभारत काल तक क्षत्रिय वर्ण में ऊँच–नीच की भावना काफी बढ गई थी। समाज में ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय का ही सम्मान होता था। राजा क्षत्रिय ही होते थे। यदि किसी कारणवश ब्राह्मण वर्ण द्वारा क्षत्रिय धर्म स्वीकार कर लिया जाता तो वह उसी धर्म को स्वधर्म मानता था। क्षत्रिय युद्ध में प्राण त्याग करना अपना सौभाग्य मानते थे। उस काल में यह मान्यता थी कि क्षत्रिय केवल बाहुबल से ही उत्तम लोकों को जीत सकते हैं, जिन्हें ब्राह्मण या तपस्वी कठोर तपस्या करके प्राप्त कर सकते हैं।[9] क्षत्रियों का यह कर्त्तव्य था कि वे विनयपूर्वक और श्रद्धापूर्ण हृदय से ब्राह्मणों को संतुष्ट रखें। न्यायपूर्ण युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म था। युद्ध में अत्यंत क्रोधित होने के बावजूद भी वे अपने धर्म को नहीं भूलते थे। अर्जुन ने हमेशा भीम की इस प्रतिज्ञा की रक्षा कि की मैं धृतराष्ट्र के समस्त पुत्रों का वध करूंगा। इस समय प्रजापालन एवं दस्युदमन ही क्षत्रिय धर्म था और क्षत्रिय लोग इसे कल्याणकारी मानकर इसी में लगे रहते थे। क्षत्रिय धर्म में भिक्षावृति पूर्णतया निषेध थी।

वैश्य वर्ण– ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में ही इस वर्ण की उत्पति पुरूष की जंघा से मानी गई हैं। जिस प्रकार शरीर का सारा भार जंघा पर होता है, उसी तरह समाज के पालन–पोषण व आर्थिक समृद्धि का भार वैश्य पर माना गया है। वार्णावत पहुंचकर महाराजा युधिष्टर ब्राह्मणों व क्षत्रियों के घर जाकर मिलते ही बाद में वैश्यों के घर भी गए। कर्ण पर्व में लिखा गया है कि वैश्य का कर्म कृषि, पशुपालन तथा धर्मानुसार दान देना है।[10] अपने इस एक विशेष गुण के कारण ही वैश्य समाज के लोगों को व्यापार के लिए कुशल माना गया है। वैश्य को भी ब्राह्मण की तरह ही दान, यज्ञ व अध्ययन करने का अधिकार उस समय प्राप्त था। महाभारत काल में वैश्यों द्वार पशुपालन का कार्य स्वधर्म के समान माना जाता था और जो वैश्य इस कार्य को छोड़कर अन्य कार्य करता था, उसे अधर्म कहा जाता था। वैश्यों के लिए ब्याज लेना, कृषि, पशु–पालन और व्यापार महान कर्म माने जाते थे।

शूद्र वर्ण– वैदिक काल में ही शूद्र वर्ण का भी उल्लेख आता है। पुरूष सूक्त के अनुसार शूद्र वर्ण की उत्पति पुरूष (ब्रह्मा) के पैरों से मानी गई है। जिस प्रकार भारतीय समाज में गंगा नदी को अपने जल

[9] **द्रोण पर्व** – 74,34.

[10] **कर्ण पर्व** –32, 47.

द्वारा लोगों की सेवा करने वाली तथा पवित्र करने वाली माना गया है, उसी तरह शूद्र वर्ण को भी समाज की सेवा करने वाला दर्जा प्राप्त हुआ है। चूंकि वैदिक काल में शूद्र वर्ण की स्थिति अधिक सम्मानजनक नहीं थी, फिर भी महाभारत काल में इस बात का उल्लेख आदि पर्व में आता है कि वार्णावत पहुंचने के बाद महाराजा युधिष्टर शूद्रों के घर भी उसी तरह से मिलने गए जिस तरह अन्य तीनों वर्णों के घर मिलने गए थे। शूद्रों के साथ भेदभाव महाभारत काल में फिर भी प्रचलित रहा। कर्ण को सूत पुत्र मानकर अर्जुन के साथ युद्ध करने से रोक दिया गया था क्योंकि कर्ण का पालन–पोषण सूत परिवार में हुआ था। शूद्रों को वेदों का अध्ययन करने तथा यज्ञों में भाग लेने की मनाही थी। उनका एकमात्र कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना था।[11]

सारांश– इस प्रकार प्राचीन काल में ही वर्ण व्यवस्था भारत में प्रचलित थी। वैदिक काल में आकर यह अधिक विकसित रूप लेकर आगे बढ़ी। वैदिक साहित्य में चार वर्णों का उल्लेख हुआ है, जिसमें ब्राह्मण वर्ण की उत्पति ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय की उत्पति भुजाओं से, वैश्य वर्ण की उत्पति जंघा से, तथा शूद्र वर्ण की उत्पति ब्रह्मा के चरणों से मानी गई है। वैदिक काल में ही यह वर्ण व्यवस्था कठोर थी और महाभारत काल में भी इसकी कठोरता कम नहीं हुई। एक विशेष गुण के कारण ही चारों वर्णों को शा़स्त्रानुकूल व्यवहार करने की बात वैदिक साहित्य, रामायण व महाभारत में मिलती है। इस वर्ण व्यवस्था में शूद्रों की स्थिति सबसे निम्न मानी गई है।

सन्दर्भ सूची–

- विमलचन्द्र पाण्डेय, **प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,** सैन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 1992.
- सुमन गुप्ता, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,** स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000.
- डी.एन. झा, **प्राचीन भारत– सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल**, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
- रोमिला थापर, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,** ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2001.
- मिथिलाशरण पाण्डेय, **प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं,** ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001.

[11] **उद्योग पर्व** –132, 30.

- डी.एन.झा, **प्राचीन भारत– एक रूपरेखा ,** मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005.
- एस.एल. नागोरी एवं कान्ता नागोरी, **प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास,** राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2007.
- कैलाश खन्ना, **प्राचीन भारत का इतिहास,** अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010.
- ए.एस.डूड्डी, **एशियंट इण्डियन हिस्ट्री**, नेहा पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012.
- रणबीर चक्रवर्ती, **भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600ई0 तक,** ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
- सोहन राज तातेड़, **प्राचीन भारत का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास,** खण्डेलवाल पब्लिशर्स, जयपुर, 2015.